गठबन्धन सरकार में क्षेत्रीय दलों की भूमिका

पूनम डागर
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग
भगिनी निवेदिता कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय

राजनीतिक दल प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र का आधारस्तम्भ होते हैं और स्वस्थ प्रतिस्पर्धात्मक दलीय व्यवस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था की दिशा एवं गत्यात्मकता की सूचक । दलीय व्यवस्था के विकास के मूल में यह अपेक्षा / धारणा रही है कि विभिन्न राजनीतिक दल समाज में उपस्थित विभिन्न हितों की संगठनात्मक अभिव्यक्ति करते हुए राजनीति में अपनी विशिष्ट पहचान बनाएँगें। समाज राजनीति-अर्थव्यवस्था के बुनियादी प्रश्नों पर अपनी विशिष्ट नीति घोषित करेंगे तथा उसी के अनुरूप अपनी राजनैतिक कार्यशैली विकसित करेंगे। विचारधारा के आधार पर एक दल को दूसरे दल से भिन्न किया जा सकेगा। किन्तु भारत में दलीय व्यवस्था के विकास की दिशा उक्त मानकों से इतर ही रही है।

भारत में राजनीतिक दल भारतीय व्यवस्था की विविधता एवं विभाजनों - दोंनो ही वास्तविकताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए एक ओर दलों की भूमिका विभिन्न हितों को पहचान एवं प्रतिनिधित्व देकर लोकतंत्र में उनकी आवाज प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण रही है तो दूसरी ओर समाज में विभाजन, ध्रुवीकरण, बिखराव और अविश्वास को पोषित करने वाली संकीर्ण राजनीति को पनपाने की रही है। एक आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में यह अपेक्षित है कि राजनीतिक दलों का संगठन, उनकी कार्यशैली एवं भूमिका विचारधारा पर आधृत हो, जिसके आधार पर एक दल को दूसरे से भिन्न किया जा सके और तदनुरूप मतदाता निर्वाचन के समय अथवा अन्य स्थितियों में अपना मत किसी दल के पक्ष विपक्ष में अभिव्यक्त कर सकें। किन्तु भारत में आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं के बावजूद परम्परागत मूल्य एवं पहचान की संरचनाओं का वर्चस्व रहा है, आज भी है। अतः राजनीतिक दलों का संरचनात्मक विचार आधुनिक होते हुए भी उनका आधार परम्परागत पहचान के स्त्रोत ही हैं। इसीलिए भारत में विचारधारागत राजनीति सशक्त नहीं हो पाई।

ज्ञातव्य है कि स्वाधीन भारत के इतिहास में दलीय व्यवस्था का स्वरूप एक सा नहीं रहा है, बल्कि बदलता रहा है। राजनीतिक दल समाज में व्याप्त विविधताओं एवं विभाजनों को प्रतिबिंबित करते हैं अतः कभी ध्रुवीकरण तो कभी विश्वत्व की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस प्रक्रिया में हितों के गठबंधनों में भी निरंतर परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। स्वाधीनता के बाद के दो दशकों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वर्चस्व रहा । इसलिए 1947-67 के कालखण्ड को एकदलीय प्रभुत्व की संज्ञा दी गई। एकदलीय प्रभुत्व की सफलता के अनेक कारण माने गए, यथा स्वाधीनता आंदोलन की विरासत, राष्ट्रीय प्रभाव के व्यक्तियों का प्रभाव, कांग्रेस का समायोजनकारी स्वरूप आदि । 1967 के बाद कांग्रेस के वर्चस्व का क्षरण तथा क्षेत्रीय दलों एवं स्थानीय नेतृत्व का उभार समानांतर रूप में प्रघटित हुआ।

चतुर्थ आम चुनाव (1967) के बाद पहली बार अनेक राज्यों, पंजाब, उत्तरप्रदेश, केरल आदि में संविद सरकारों का गठन हुआ। तथा अनेक क्षेत्रीय दलों जैसे डी. एम. के. भारतीय लोकदल, अकाली दल आदि का जन्म हुआ। मोरारजी देसाई सरकार के पतन के पश्चात् क्षेत्रीय दलों की प्रतिष्ठा में कुछ कमी आई, परन्तु नब्बे के दशक में क्षेत्रीय दलों की उपयोगिता एवं महत्व में काफी वृद्धि हुई।

वर्तमान समय में, भारतीय चुनावी राजनीति में छह राष्ट्रीय दल सक्रिय हैं- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पाटी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी), राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी, बहुजन समाजवादी पार्टी। क्षेत्रीय व राज्य स्तरीय दलों के रूप में प्रमुख हैं :- अन्नाद्रुमक, तेलगुदेशम, द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम, अकाली दल, शिव सेना, नागालैण्ड यूनाइटेड फ्रंट, नेशनल कांफ्रेस, समाजवादी पार्टी, जनता दल, बीजू जनता दल । इसमें अकाली दल एवं शिव सेना सहित देश की राजनीति में सक्रिय मुस्लिम लीग व झारखण्ड पार्टी को स्थानीय एवं साम्प्रदायिक दलों की श्रेणी में रखा जाता है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस तिवारी, जनता पार्टी, केरल कांग्रेस, लोकतांत्रिक दल, लोक जनतांत्रिक पार्टी जैसे कई तदर्थ दलों की भी राजनीति में सक्रिय भूमिका रही है। किन्तु ऐसे दल बनते बिगड़ते रहते हैं।

2009 के चुनावों तक देश में 6 राष्ट्रीय दलों के अलावा 600 से अधिक छोटी-बड़ी राजनीतिक दलों की सक्रियता थी । और शेष पंजीकृत गैर मान्यता प्राप्त दल थे।

भारत में क्षेत्रीय दलों के उदय एवं विकास के लिए उत्तरदायी तत्वः

1989 के पश्चातवर्ती वर्षों में देश में स्थानीय राज्य स्तरीय एवं क्षेत्र - स्तरीय दलों की बाढ़ सी आ गई। और केन्द्रीय सरकार के गठन एवं पतन में भी क्षेत्रीय दलों ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस सन्दर्भ में उदाहरण के लिए श्री देवगौड़ा सरकार के गठन एवं श्री वाजपेयी सरकार के पतन को लिया जा सकता है। भारत की दलीय व्यवस्था में आए इस अभूतपूर्व परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारणों की विवेचन इस प्रकार है:

- स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में जनता की आकांक्षाएँ सीमित थीं, लेकिन जैसे-जैसे समय गुजरता गया वैसे-वैसे जनता की आवश्यकता एवं आकांक्षाएँ बढ़ती गयीं, इस स्थिति में राष्ट्रीय दल सुदूर क्षेत्रों की जनता की आशाओं को पूरा करने में विफल रहे। राष्ट्रीय दलों की इस विफलता ने क्षेत्रीय दलों के उदय के लिए उपजाऊ भूमि प्रदान की।
- भारतीय दलीय व्यवस्था का एक बहुत बड़ा दोष यह है कि यहाँ के राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र का अभाव पाया जाता है। राष्ट्रीय दलों में परिवारवाद के विकास ने महत्वकांक्षी एवं जमीन से जुड़े राजनेताओं को नया क्षेत्रीय दल बनाने को विवश किया। आज अनेक क्षेत्रीय दलों जैसे समता पार्टी, जनता दल (से.) जनता दल (यु.), राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (राकंपा) आदि के गठन में मुख्यतः यही कारण उत्तरदायी रहा है।
- राजनीति से नैतिकता एवं सिद्धांतों का ह्रास भी क्षेत्रीय दलों के उदय का एक प्रमुख कारण है। आज राजनीतिक दलों का गठन विचारधारा के आधार पर करने की मान्यता मृतप्राय हो गई है और जाति, भाषा, क्षेत्र एवं व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए राजनीतिक दल बनाने की परम्परा सी चल पड़ी है। फलत: छोटे दलों की बाढ़ सी आ गई है।
- छोटे-छोटे राजनीतिक दलों की संख्या में भारी वृद्धि के लिए 1985 के दल-बदल विरोधी कानून को भी उत्तरदायी माना जा रहा है। इस अधिनियम के कारण राजनीतिक दलों के विभाजन एवं छोटे छोटे दलों के निर्माण को प्रोत्साहन मिला है। आज निर्वाचित सांसद एवं विधायक इस अधिनियम से बचने के लिए एक छोटा सा दल बना लेना ही श्रेयस्कर समझते हैं । लोकतांत्रिक कांग्रेस, जनतांत्रिक बसपा, जनता दल (यु.) आदि के गठन के पीछे यह एक प्रमुख कारण रहा है।
- राजनेताओं की महत्त्वकांक्षा एवं व्यक्तिगत स्वार्थ भी क्षेत्रीय दलों के उदय का एक कारण माना जा सकता है। आज महत्त्वकांक्षी राजनेता पद एवं पैसे के लिए सिद्धांतों एवं विचारधारा को त्यागकर

छोटे-छोटे राजनीतिक दलों के गठन पर ज्यादा जोर दे रहे हैं ताकि वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए अधिक से अधिक सौदेबाजी कर सकें।

- अनावश्यक राजनीतिक दल के निर्माण के रोक संबंधी कोई विशेष प्रावधान नहीं होने के कारण भी छोटे-छोटे राजनीतिक दलों के निर्माण को प्रोत्साहन मिला है।

अतः क्षेत्रीय दलों की बढ़ती हुई संख्या मुख्यतः दलगत राजनीति, जातिगत राजनीति, क्षेत्रगत राजनीति, भाषागत राजनीति, सम्प्रदायगत राजनीति एवं स्वार्थपरक राजनीति का परिणाम है।

गठबंधन की राजनीति और क्षेत्रीय दल :-

"कांग्रेस प्रणाली" एवं 'एकदलीय प्रधान्य व्यवस्था' की समाप्ति के बाद 1980 के दशक में भारतीय राजनीति में राज्यस्तरीय एवं क्षेत्र स्तरीय दलों की संख्या काफी बढ़ गई और इस बीच विसांस्थानीकरण के कारण कांग्रेस संगठन भी कमजोर पड़ गया। इस दौर में कुछ ऐसे राज्य स्तरीय दलों का भी विकास हुआ जिसकी गूँज राष्ट्रीय सतर पर भी सुनी गई। अन्नाद्रुमक, तेलगूदेशम, शिव सेना, असम गण परिषद्, अकाली दल, नेशनल कान्फ्रेंस जैसे दलों का नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। कांग्रेस विरोधी राजनीति ने इसे और भी अधिक तीव्रता प्रदान की । फलतः भारत में कांग्रेस दल का प्रभुत्व बढ़ता गया। 1977 में जनता पार्टी की सरकार का बनना कांग्रेस विरोधी राजनीति का ही एक अवश्यम्भावी परिणाम था। श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा अपनाई गई केन्द्रीकरण की नीति ने कांग्रेस को पूर्णतः विसांस्थानीकृत कर दिया था। इससे पार्टी के अंदर भी असंतोष व्याप्त था। इसके साथ-साथ जे. पी. आंदोलन ने भी श्रीमती गाँधी की स्थिति कमजोर बना दी थी। फलतः 1977 में केन्द्र में पहली बार गैर-कांग्रेसी सरकार बनी। 1980 एवं 1984 में पुनः कांग्रेस ने अपना शासकीय आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस दौर में एकदलीय प्रधानता वाला प्रतिमान उभरकर सामने आया। किन्तु 1990 के दशक में भारतीय राजनीति में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। 1989 के चुनावों के पश्चात् चुनावी चंचलता की वजह से दलों के बीच चुनावी प्रतिस्पर्धा काफी बढ़ गई जो त्रिशुंक राजनीति एवं गठबंधन की राजनीति के रूप में परिलक्षित हुई ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मिली-जुली सरकार या गठबंधन सरकार का निहितार्थ वह सहयोगी व्यवस्था है जिसमें अस्पष्ट बहुमत की स्थिति में विभिन्न दल एकजुट होकर सरकार या मंत्रिमण्डल का निर्माण करते हैं। संसदीय प्रणाली की यह प्रमुख विशेषता है कि इसमें कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती

है। संसदीय शासन प्रणाली में उसी दल का नेता प्रधानमंत्री बन सकता है जिसे प्रतिनिधि सभा (लोकसभा) में बहुमत प्राप्त हों। गठबंधन सरकार की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में दलीय गठबंधन बनते हैं, उसके नेता लोकसभा में अपना बहुमत साबित करने का दावा पेश करते हैं। ऐसे गठबंधन में दो या दो से अधिक राजनीतिक दल शामिल होते हैं। जो मिल जुल कर सरकार का निर्माण करते हैं।

पिछले दो दशकों में भारतीय राजनीति के अंतर्गत दो गत्यात्मक बदलाव हुए हैं उसने न केवल दलीय व्यवस्था की प्रकृति को बिल्कुल बदल दिया है, बल्कि मिली-जुली सरकारों की निरतंरता को एक राजनीतिक तथ्य भी बना दिया है। 1989 के पश्चात् भारतीय राजनीति में भारी संख्या में छोटे-बड़े दलों का उद्भव एवं विकास हुआ है। इसके परिणामस्वरूप 'कांग्रेस सिस्टम' का अंत हो गया तथा एकदलीय प्राधान्य वाली दलीय व्यवस्था बहुदलीय व्यवस्था की ओर उन्मुख हुई। कई छोटे-बड़े दल मजबूत और शक्तिशाली दलों के रूप में उभरे । इनकी पकड़ न केवल राज्य राजनीति बल्कि राष्ट्रीय राजनीति में भी मजबूत होती गई। ऐसी स्थिति ने किसी भी दल को इस स्थिति में नहीं रहने दिया कि वह लोकसभा में अपने दल के बल पर स्पष्ट बहुमत जुटा सकें। फलतः 1989 में वी. पी. सिंह के नेतृत्व में गठित संयुक्त मोर्चे की सरकार के साथ भारत में गठबंधन की सरकार का जो दौर शुरू हुआ, वह एक महत्वपूर्ण राजनीतिक वास्तविकता के रूप में उभरता हुआ दिखाई पड़ता है।

1989 से अब तक:-

1991-96 (राव सरकार) के दौर को यदि अपवाद माने तो 1989 से लेकर अब तक केंद्र एवं अधिकांश राज्य स्तर पर गठबंधन की सरकारें ही बनती रही हैं। भारत में अंत: दलीय गठबंधन की शुरुआत मुख्यत: विभाजित भारतीय समाज के लिए सांस्कृतिक सहक्रिया (cultural synergy) की आवश्यकता तथा विभाजित राज्य - व्यवस्था के लिए " राजनीतिक अन्वेषण" के रूप में हुई है। श्रीधरन ने संविद सरकारों को भारतीय समाज की बहु सांस्कृतिक, बहुलवादी तथा संघीय शासन प्रणाली का परिणाम माना है। ध्यातव्य है कि 1977 में पहली बार केंद्र में जो जनता पार्टी की सरकार बनी थी, वह भी मुख्यतः मिली-जुली सरकार का ही एक प्रारूप था क्योंकि इसमें जनसंघ, भारतीय लोकदल, संयुक्त समाजवादी दल, कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी (जगजीवन राम) ने मिलकर जनता पार्टी का गठन किया था। यह सरकार भी ज्यादा दिन नहीं चली और अगस्त-दिसम्बर 1979 के दौर में चौधरी चरण सिंह की विद्रोही सरकार बनी जिसे कांग्रेस (आई) ने बाहरी

समर्थन दिया था, किंतु कांग्रेस द्वारा विश्वास मत प्राप्त करने के संदर्भ में समर्थन नहीं किए जाने के भय से चौधरी चरण सिंह ने 20 अगस्त 1979 को त्याग पत्र दे दिया। इसके साथ ही राष्ट्रपति ने लोक सभा भंग कर दी।

1989 के चुनावों के पश्चात् गठबंधन की सरकार का वास्तविक रूप उभर कर सामने आया। 9वीं लोक सभा के चुनाव में किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। फलतः वी. पी. सिंह के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चे की सरकार बनीं। चूंकि इस मोर्चे का गठन कांग्रेस विरोधी नीतियों के आधार पर हुआ था, अतः इसे वामपंथी दल एवं भाजपा (दो परस्पर विरोधी पक्ष) ने अपना बाहरी समर्थन दिया था। राष्ट्रीय मोर्चा अथवा संयुक्त मोर्चा का गठन राष्ट्रीय दलों एवं क्षेत्रीय दलों का गठबंधन था। जनता दल के नेतृत्व में इसमें तेलगूदेशम पार्टी, डी.एम.के., कांग्रेस (एस), असम गण परिषद एवं अन्य छोटी पार्टियाँ शामिल थीं। संयुक्त मोर्चा का अनुभव बड़ा तिक्त रहा। इसका पूरा जीवनकाल 11 महीने का रहा। भाजपा के समर्थन वापस लेने से यह सरकार गिर गई। इसके पश्चात् यह मोर्चा नेपथ्य में चला गया। राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि ओ.बी.सी के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था रही जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने भी समर्थित किया। इसके पश्चात् नवम्बर 1990 में चंद्रशेखर की अल्पमत सरकार बनी जिसे कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया था, यह सरकार दसवीं लोक सभा चुनाव तक चली। 10वीं लोकसभा चुनाव में केंद्र में श्री नरसिंह राव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी जो पूरे पांच वर्ष चली।

भाजपा एवं गठबंधनः-

1996 से लेकर अब तक केंद्र में निरंतर संविद या गठबंधन सरकार का दौर चलता रहा है। इस बीच भाजपा के हिंदुत्ववादी राजनीति एवं रामजन्म भूमि की राजनीति काफी लोकप्रिय हुई और ऐसा लगने लगा कि भाजपा कांग्रेस का सही विकल्प हो सकती है। इस बीच 1996 में 11वीं लोक सभा चुनाव हुए जिसमें एक बार फिर किसी दल को बहुमत नहीं मिला किंतु भाजपा सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी। वाजपेयी के नेतृत्व में भाजपा ने अकाली दल, शिवसेना, हरियाणा विकास पार्टी आदि के सहयोग से अपनी सरकार बनाई। यह सरकार तेरह दिनों में गिर गई। इसके बाद क्रमशः देवगोड़ा एवं आई. के. गुजराल के नेतृत्व में सरकारें बनीं। इन सरकारों का जीवनकाल भी महीनों में सिमटा रहा। 1998 में बारहवीं लोक सभा के चुनाव हुए जिसमें एक बार फिर 179 सीटों के साथ भाजपा गठबंधन (इसमें 19 छोटे-बड़े दल शामिल थे) सबसे बड़े गठबंधन के रूप में उभरा। इसने वाजपेयीजी के नेतृत्व में अपनी सरकार बनाई। किंतु यह सरकार, 17 अप्रैल

1999 को मात्र एक मत से गिर गई। 1999 में 13वीं लोक सभा के चुनावों में एक बार फिर भाजपा के नेतृत्ववाला राष्ट्रीय जनतांत्रिक मोर्चा 305 सीटों के साथ सबसे बड़े गठबंधन के रूप में उभरा। पुनः अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एन. डी. ए. सरकार का गठन हुआ। इसमें कुल 24 छोटे-बड़े दल शामिल थे। एनडीए सरकार ने अपने शासन के पांच वर्ष पूरे किए। इस सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने देश को राजनीतिक उथल-पुथल से बचा लिया था तथा अपनी सहनशीलता का प्रदर्शन किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं संयुक्त प्रगतिशील मोर्चा :-

इस बीच सोनिया गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने पुनः राष्ट्रीय राजनीति में अपनी पकड़ मजबूत करने का प्रयास किया तथा पार्टी को एक संगठनात्मक सुदृढ़ता प्रदान करने की कोशिश की। 2004 के पूर्वार्द्ध में 14वीं लोक सभा के चुनाव हुए जिसमें केंद्र में पुनः एक नई गठबंधन सरकार का गठन हुआ । कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार में कुल बारह पार्टियां शामिल हुईं और वाम मोर्चा ने अपने 61 सीटों के साथ इसे अपना बाहरी समर्थन दिया । कांग्रेस गठबंधन को कुल 222 सीटें प्राप्त हुईं जिसमें कांग्रेस को 145 सीटें प्राप्त थीं। राष्ट्रीय जनता दल, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, पीडीपी, द्रमुक, झारखंड मुक्ति मोर्चा, लोकतांत्रिक जनशक्ति पार्टी, जैसे 12 छोटे-बड़े दल इसमें शामिल हुए। उल्लेखनीय है कि भारत-अमेरिका आणविक समझौते के मुद्दे पर यूपीए सरकार को अविश्वास प्रस्ताव का भी सामना करना पड़ा। वाम मोर्चे ने हालांकि इस सरकार से अपना बाहरी समर्थन वापस ले लिया फिर भी यूपीए सरकार ने अपना नेतृत्व कायम रखा। लोक सभा में अपना बहुमत साबित कर इस सरकार ने अपने 5 वर्षों का कार्यकाल पूरा किया।

पंद्रहवीं लोक सभा एवं यू.पी.ए. :-

15वीं लोक सभा के चुनावों में एक बार फिर डॉ मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यूपीए सरकार का गठन हुआ। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह एवं यूपीए की यह लगातार दूसरी जीत है।

इस चुनाव में युपीए को 262 (जिसमें कांग्रेस को अकेले 206 सीटें हैं), एनडीए को 159, वाम मोर्चा को 79 तथा चौथे मोर्चे को केवल 27 सीटें मिलीं। इसमें 6 राष्ट्रीय दल, 45 राज्य स्तरीय दल एवं 600 से अधिक अन्य दलों ने भाग लिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को डी.एम.के. (18 सीट), अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस (19 सीट), राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी (9 सीट), नेशनल कांफ्रेंस (3 सीट), झारखंड मुक्ति मोर्चा (2 सीट), इंडियन यूनियम मुस्लिम लीग (2 सीट), जैसी पार्टियों का सहयोग प्राप्त हुआ। नागालैंड पीपुल्स फ्रंट, बोडोलैंड पीपुल्स

फ्रंट, स्वाभिमानी पक्ष, बहुजन विकास आगाढ़ी व सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट ने यूपीए सरकार को अपनी क्रमशः एक-एक सीटों के साथ बिना शर्त समर्थन दिया। इस प्रकार 262 सीटों के साथ (कुल 543 सीटों में) यूपीए सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी । बहुजन समाज पार्टी (23 सीटें) एवं समाजवादी पार्टी (21 सीटें) जनता दल-सैक्यूलर (13 सीटें), राष्ट्रीय जनता दल (4 सीटें) एवं स्वतंत्र व अन्य (3 सीटें) पार्टियों ने यूपीए को अपना बाहरी समर्थन दिया। इस प्रकार 322/543 के बहुमत से डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में यूपीए ने 22 मई 2009 को अपना कार्यभार संभाला।

इस चुनाव की एक मुख्य विशेषता यह रही है कि इसमें चौथे मोर्चे की भी तैयारी की गई थी। समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल एवं लोक जनशक्ति पार्टी ने मिलकर क्रमशः मुलायम सिंह, लालू प्रसाद एवं रामविलास पासवान के नेतृत्व में चौथे मोर्चे के रूप में इस चुनाव में भाग लिया था, किंतु यह प्रयोग बिल्कुल विफल रहा, क्योंकि इस गठबंधन को सिर्फ 27 सीटें प्राप्त हो पाईं और इन दलों को 37 सीटों का नुकसान उठाना पड़ा।

निष्कर्षात्मक अवलोकनः-

वस्तुतः गठबंधन सरकारों ने भारतीय शासन प्रणाली के संघीय स्वरूप को कई तरह से प्रभावित किया है। बहुदलीय व्यवस्था के विकास एवं गठबंधन सरकार के दौर में, संसदीय स्वायत्तता बढ़ती जा रही है तथा संघ एवं राज्यों के संवैधानिक प्रधानों की भूमिका बढ़ गई क्योंकि प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्रियों की भूमिका सहयोगी दलों के दबाव के कारण कम हुई है। क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों (टी.डी.पी., डी.एम.के., अकाली दल, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, समता पार्टी आदि) ने भारतीय राजनीति में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली है और नीति निर्धारण की प्रक्रिया को भी इन दलों ने प्रभावित करना शुरू किया है। इसका प्रमुख करण यह है कि राष्ट्रीय दलों का आधार एवं आकार सिकुड़ गया है।

गठबंधन सरकार में सहयोग करने वाले दल अपनी शर्तों के आधार पर सरकार में शामिल होते हैं। ऐसी सरकार में शासन को स्थिरता के साथ चलाने के लिए प्रधानमंत्री को सहयोगी दलों को खुश करने की कोशिश करनी पड़ती है, अन्यथा गठबंधन के टूटने का एवं समर्थन की वापसी का भय सदैव बना रहता है। अतः सौदेबाजी की राजनीति शुरू होती है।

लेकिन भारतीय संघवाद की गत्यात्मता की दृष्टि से राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका को सकारात्मक माना जा रहा है। दूसरी ओर यह संदेह व्यक्त किया जाता है कि क्षेत्रीय दल 'समग्र राष्ट्रीय दृष्टि' के विकास में बाधक / अक्षम होते हैं। दोनों तर्कों का इस तथ्य के संदर्भ में आकलन किया जाना चाहिए कि यदि विगत दशकों में राष्ट्रीय दलों ने क्षेत्रीय हितों का पर्याप्त ध्यान रखा होता तो क्षेत्रीय दलों का इस प्रकार त्वरित विकास नहीं होता। 1990 के दशक के बाद की भारतीय राजनीति को क्षेत्रीय दलों की निर्णायक भूमिका के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। क्षेत्रीय दलों की सक्रिस सहभागिता ने उन्हें राष्ट्रीय राजनीति एवं शासन में महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्थापित किया।

चूँकि गठबंधन सरकारों के अंतर्गत संघीय स्तर पर सत्ता में व्यापक दृष्टि से छोटे-बड़े दलों की सहभागिता होती है इसलिए इससे राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को भी बल मिला है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि सत्ताधारी गठबंधन में शामिल होने वाले दलों को नीतियों और विचारों के मामले में होने वाले संभावित टकरावों से निपटने के लिए एक सर्वमान्य तरीका पहले से ही तय कर लेना चाहिए। साथ ही भारतीय संविधान और राज्य व्यवस्था के विद्वानों तथा राजनीतिक दलों के नेताओं के बीच गठबंधन सरकारों के गठन और उसमें क्षेत्रीय दलों की भूमिका की समस्त प्रक्रिया पर गंभीर विचार-विमर्श करना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. दुवर्जर, एम. (1954) पॉलिटिकल पार्टीज, मैथुएन, लंदन।

2. सारटोरी, जी. (1976), पार्टीज एंड पार्टी सिस्टम: ए फ्रेमवर्क फॉर एनैलिसिस, सी.यू.पी., कैंब्रिज ।

3. नारायण, इकबाल (1988), राजनीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत, रतन प्रकाशन, दिल्ली।

4. कोठारी, रजनी (2002) "दि कांग्रेस सिस्टम" इन जोया हसन (सं.), पार्टी एंड पार्टी पॉलिटिक्स इन इंडिया, ओ.यू.पी., नई दिल्ली।

5. सिंह, एम.पी. एंड रेखा सक्सेना, (2008), इंडियन पॉलिटिक्स कंटम्पोररी इश्यूज एंड कन्सर्न्स, प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

6. कोठारी, रजनी (1964), "दि कांग्रेस सिस्टम इन इंडिया", एशियन सर्वे वोल्यूम 12 (10) : दिसंबर, नई दिल्ली।

7. जोंस, मोरिस (1971), दि गवर्नमैंट एंड पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया, हचीसन, लंदन। और विकीपीडिया - दि फ्री एनसाइक्लोपीडिया : इंडियन जनरल इलेक्शन 2009।

8. कोठारी, रजनी (1972), पॉलिटिक्स इन इंडिया, ओरियंट लॉंगमैन, नई दिल्ली।

9. सिंह एम.पी. एवं अनिल मिश्रा, सं. (2004), कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया: प्रोबलम्स एंड प्रोस्पेक्टस, मनोहर, नई दिल्ली।

10. पीटर रोनाल्ड डी सूजा एंड ई. श्रीधरण, सं. (2006), इंडियाज पॉलिटिकल पार्टीज, सेज पब्लिकशन, नई दिल्ली।

11. चक्रवर्ती, विद्युत (2006) 'फोर्जिंग पावर' : कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली, चेप्टर - 11

12.गुप्ता, भवानीसेन, इंडिया: प्रोब्लेम्स ऑफ गवर्नेंस, कोणार्क पब्लिकेशन,